International Journal of Scientific Research in Science and Technology
© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

वेदों में वनस्पति चिकित्सा विज्ञान

शोभा देवी
शोधच्छात्रा,
क्रेट–2016 संस्कृत विभाग,
ने. ग्रा. भा. मा. वि. कोटवा जमुनीपुर,
इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।
डॉ.देवनारायण पाठक
विभागाध्यक्ष

ज्ञान की अमूल्य एवं अक्षय निधि वैदिक वाङ्मय भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान–विज्ञान का मूलाधार है। इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के परिहार के लिए वेद अलौकिक उपाय है। वेदों में धर्म के साथ–साथ मानव जीवन को सुरक्षित एवं स्वस्थ रखने के लिए चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी अनेकानेक तत्व एवं सिद्धान्त वेदों में निहित है।

(क) ऋग्वेद में आयुर्वेदः – चिकित्सा का सम्बन्ध यद्यपि अथर्ववेद से अधिक है तथापि अन्य वेदों में भी इस विषय के मंत्र है। ऋग्वेद सबसे प्रथम माना जाता है इसलिए उसमें आयु से सम्बन्धित मंत्रों का होना स्वाभाविक है। इन मंत्रों में सामान्यतः प्राकृतिक वस्तुओं से स्वास्थ्य की प्राप्ति का निर्देश है जैसे– आप, जल, ओषधियाँ आदि। औषधियों में वनस्पति का उल्लेख है। उपलब्ध आयुर्वेद संहिताओं में ओषधियों का उपयोग एक ही द्रव्य के उपयोग की अपेक्षा मिश्रण रूप में अधिक है।

ऋग्वेद में आयुर्वेद के आचार्यों का उल्लेख मिलता है ऐसे आचार्यों में मुख्यतः दिवोदास और भरद्वाज है। इनसे शल्य और कायचिकित्सा का प्रचार पृथ्वी पर हुआ है, इसलिए दिवोदास, भरद्वाज, अश्विनों का नाम ही मंत्रों में आता है। 1/8/11

लोहे की टांग का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है युद्ध में पुरोहित सदा साथ में रखता है। इसका कार्य अपने स्वामी की मंगल कामना करना होता था। कोई भी विघ्न आने पर वह प्रार्थना कर अपने यजमान की रक्षा करता था एक मंत्र में पुरोहित की पत्नी की टाँग कट जाने पर लोहे की टाँग के लिए अश्विनौ से प्रार्थना करता है यथा–

"चरित्रं हि वेरिवाच्छेदिर्णभाषा खेलस्य परितकम्याताम्।

सद्यो जहांमायसी विष्पलायै धनेहि ते सर्न्तवे प्रत्यधत्तम्।।" ऋ. 1/176/15

वेद में दित्यवैद्य का लक्षण बताते हुए कहा गया है–

1. सम्पूर्ण ओषधियों को अपने पास ठीक से रखने वाला।

2. विशेष प्रबुद्ध अपने शास्त्र का पूर्ण सांगोपांग ज्ञाता।

3. युक्ति और योजना को जानने वाला।

4. राक्षसों का नाश करने में समर्थ।

5. रोगों को जड़ से उखाड़ सके।

ये पाँच लक्षण निम्न मंत्र में कहे गये हैं।

'यत्रौषधीः समग्मत राजानः समितामिव।

विप्रः स उच्यते भिषग रक्षोहामीवचातनः।।

जिस प्रकार से राजा लोग अथवा क्षत्रिय सभा में एकत्र होते हैं, उस प्रकार से जहाँ औषधियाँ इकट्ठी होती है, उस विशेष मनुष्य को वैद्य कहते हैं, वह राक्षसों का हनन करने वाला और रोग दूर करने वाला कहा जाता है।

सुश्रुत ने वैद्य का लक्षण दिया है–

'तत्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयंकृतिः।

लघुहस्तःशुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः।।

प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान् व्यवसायी विशारदः।

सत्यधर्म परोयश्च स भिषकपाद उच्यते।।'

(सुश्रतः सू. अ. 24/10–20)

ओषधि चिकित्साः–

वनस्पति या ओषधियों के उपयोग से रोग दूर होते हैं – ओषधि का अर्थ ही वेदना को दूर करने वाली वस्तु है। (ओषं रुजं धयति इति ओषधि) ओष नाम रस का भी है। वह रस जिसमें रहता है वह ओषधि है। वेद में ओषधि के लिए माता शब्द आया है (ओषधी रीति मातरस्तद्धो देवीरुपबुवे। ऋ. 10/97/4)

'ओषधीरिति माता मातरस्तद्धो देवीरुप ब्रूवे।

सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुषे।। ऋ. 10/90/4

ओषधियाँ सच्ची माताएँ हैं, देवियाँ – हित करने वाली माताएं हैं, देव की शक्ति धारण करने वाली

देवियाँ हैं इसी से चरक में दिव्य ओषधियाँ पृथक वर्णित हैं।

ओषधियों के लिए सम्पूर्ण सूक्त है जिसमें कुछ अंश यहाँ दिया गया है –

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।

मनै नु बभ्रूणा महं शतं धीमानि सप्त च।। ऋ. 10/17/1

जो ओषधि या वनस्पति और देवों से तीन युग पहले उत्पन्न हुयी उन भरण पोषण करने वाली ओषधियों के सौ और सात स्थान या जातियाँ हैं, ऐसा मैं जानता हूँ।

भिन्न–भिन्न अंगों से भिन्न–भिन्न रोगों का निकलना बताया गया यथा–

(ऋ. 10/164/1)

यक्ष्म रोग से पीड़ित व्यक्ति। तेरी आँखों से, कानो से, चिबुक से, सिर से, मस्तिष्क से और जिह्वा से रोग को पृथक करता हूँ यह मंत्र अथर्ववेद में भी है।

ऋग्वेद में अनेक प्रकार की चिकित्सा का वर्णन मिलता है। जैसे – जल चिकित्सा और सौर चिकित्सा, वायु चिकित्सा, मानस चिकित्सा आदि। जल चिकित्सा में जल द्वारा चिकित्सा की गयी, जल को निःसन्देह औषिध बताया गया है जल निःसंशय रोगों को दूर करने वाला तथा सभी प्राणियों का जीवन बताया गया है। सौर चिकित्सा में सूर्य की किरणों द्वारा की जाने वाली चिकित्सा को बताया गया। कृमि जिनके लिए आयुर्वेद में रक्ष या राक्षस, निशाचर या यातुधान शब्द आये हैं, वे सूर्य से नष्ट होते हैं। वेद में कहा गया है – 'उद्यन्नादित्यः कृमीन् हन्ति'।

उदित होता हुआ सूर्य कृमियों को मारता है –

वायु चिकित्सा में वायु द्वारा की जाने वाली चिकित्सा तथा वायु को ही मनुष्यों का प्राण बताया गया। वायु में अमृत का, खजाना है, ऐसा ऋग्वेद में कहा गया–

आवात् वाहि भेषजं विवात वाहि यद्रपः।

त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।। (ऋ. 137/3)

हे वायु! अपनी दवाई ले आओ और यहाँ से सब दोष दूर करो, क्योंकि तुम ही सब ओषधियों से युक्त हो।

रोग के दो ही अधिष्ठान हैं– मन और शरीर। मन के दो दोष है – रज और तम शरीर में रोग होने से पूर्व मन रुग्ण होता है, कई शरीर स्वस्थ दीखता है, परन्तु मन ही अस्वस्थ रहता है। उन्माद, अपस्मार रोगों का सम्बन्ध मन तथा बुद्धि से ही है इसलिए मन को ही मुक्ति तथा बन्धन का कारण माना गया है, इस मन की भी चिकित्सा भी वेदों में वर्णित है। मन प्राणियों में अमृत रूप है। मन के बिना कोई कर्म

नहीं किया जाता, मन के द्वारा सप्त होता यज्ञ फैलाया जाता है मन को वश में करने का साधन प्राणायाम है और इन्द्रियों को वश में रखने वाला मन है, मन के बल से बहुत से रोग नष्ट होते हैं।

(ख) यजुर्वेद में आयुर्वेद – यजुर्वेद में ओषधियों के लिए बहुतेरे मन्त्र आये हैं, इनसे स्पष्ट है कि ओषधियों का उपयोग यज्ञकर्म तथा स्वास्थ्य के लिए विशेष होता था ओषधियों से नाना प्रकार की प्रार्थना की गयी है। ऋग्वेद के मन्त्र भी इस संहिता में बहुत आये हैं।

ओषधियाँ जो कि तीन युगों से पहले उत्पन्न हुई, उन भरण पोषण करने वाली ओषधियों के सौ और सात स्थान है, ऐसा मैं जानता हूँ। हे माता ओषधियों! तुम्हारे अपरिमित जन्मस्थान हैं, तुम्हारे प्रोद्गम असंख्य हैं, तुम्हारे अंसख्य है इसलिए तुम मुझको रोगरहित करो!

हे ओषधियों! तुमको खोदने वाला नष्ट न हो और जिसके लिए खोद रहा हूँ वह व्यक्ति भी नष्ट न हो, दो पैर वाले मनुष्य और चार पैर वाले पशु सभी रोग रहित हों।

ओषधियों को केवल नाम और रूप से जानने का महत्व नहीं है नाम, रूप से तो ओषधियों जंगल में गाय भेड़ चराने वाले चरवाहे तथा अन्य अरण्यवासी भी जानते हैं। इनके उपयोग को देशकाल के अनुसार एवं प्रत्येक पुरुष की विवेचना के अनुसार जो जानता है वही सच्चा भिषक् है। चरक सू. अ. 1/120–123

ओषधियों की महत्ता और उनके प्रति पूज्यभाव पण्डितराज जगन्नाथ के श्लोक में स्पष्ट है–

धत्तेभरं कुसुमपत्रफलावलीनां धर्मव्यथा वहति शीत भव। रुजश्च।

योदेहमर्पयति चान्यसुवस्य हेतोस्तस्मै वदान्यगुरवे तरवे नमोऽस्तु।।

भामिनीविलास

वेद में ओषधियों को राज्ञी कहा गया है ओषधियाँ माता की तरह रक्षा करती हैं जिस मनुष्य को ओषधियों का समयक् ज्ञान होता है उसे भिषक कहते हैं। राजा लोग जिस प्रकार समिति में एकत्रित होते हैं उसी प्रकार जिसमें ओषधियाँ एकत्र रहती हैं वही सच्चा भिषक है, वह राक्षस और रोगों को दूर कर सकता है। (यजु. 12/8)

वेद में ओषधियों की माता को दूष्कृति (सर्वेषां रुग्णानां निष्कर्त्री) सब रोगों को निकालने वाली कहकर प्रार्थना की गयी है।

हे ओषधियों! तुम भी मेरे रोगों को निकालो (यजु. 12/91)

ओषधियाँ कहती हैं कि आकाश – द्युलोक से आती हुई हम जिस व्यक्ति के पास पहुँच जाती हैं, वह किसी तरह भी नष्ट नहीं होता।

जो रोगों को नष्ट करता, राक्षसों को मारता है, वह वेद में दिव्य भिषक् कहा गया है – 'कम न होने

वाला, सदा बढ़ने वाला, रोग बीजो को नष्ट भ्रष्ट करने वाला सब साक्षसो को नीचे की ओर से निकालने वाला है, वह उपदेशक पहला दिव्य वैद्य है।

औद्भिदं तु चतुर्विधम् –

वनस्पतिस्तथा वीरुद् वानस्पत्यस्तथौषधिः।

फलैवनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पत्यः फलैरपि।।

ओषध्यः फलपाकान्ताः प्रतानैर्वीरुधः स्मृता।। (चरक. सू. अ. 1/70/72)

फलवाली ओषधियाँ वनस्पति हैं, इनमें फूल दृश्य नहीं होता, यथा – गूलर। पुष्प आने के पीछे जिनमें फल आता है, वे वानस्पत्य हैं, यथा – आम, नारंगी आदि। फल आने पर जिनका नाश हो जाता है तो ओषधियाँ है यथा मूँग, तिल आदि। प्रतानवाली लता आदि वीरुध है, यथा – चमेली – मालती आदि।

(ग) अथर्ववेद में आयुर्वेद – अथर्ववेद का सम्बन्ध ही आयुर्वेद उपांग से है।

'तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृक सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या। वेदों ह्यार्थवणो दानस्वस्त्यन बलि मंगल होम नियम प्रायश्चित्तोप वास मंत्रादि परिग्रहच्चिकित्सां प्राह। चिकित्सा चायुषो हितायोपदिश्यते।। (चरक. सू.अ. 30/21)

काश्यप संहिता में औषध और भेषज का भेद बताते हुए कहा है कि दीपन आदि गुणवाली वस्तुओं के लिए औषध शब्द आता है, हवन, व्रत, तप, दान रूपी शान्तिकर्म के लिए भेषज शब्द आता है (काश्यप संहिता, औषध–भेषजेन्द्रियाध्याय) अथर्ववेद में शान्तिकर्म विशेष रूप से है। इसी से कुछ सज्जन इसका सम्बन्ध जादू टोने से लगाते हैं। शान्तिकर्म – स्वस्तिपाठ आदि भी चिकित्सा कर्म है। सूतिकागार में प्रवेश करने से पूर्ण अथवा शस्त्र कर्म करने से पूर्व स्वस्ति वाचन शान्ति पाठ करने का विधान है।

अथर्ववेद में वनस्पतियों का स्पष्ट नामोल्लेख, कृमि सम्बन्धी जानकारी, शल्य चिकित्सा और प्रसूति चिकित्सा आदि विषय मिलते हैं। अथर्ववेद का सम्बन्ध मनुष्य जीवन से क्रियात्मक रूप से होने से आयुर्वेद का सम्बन्ध इसी से विशेष है। जिस प्रकार तीनों वेदों का अपना–अपना उपवेद बताया गया है। उसी प्रकार अथर्ववेद का भी सबसे प्रमुख उपवेद आयुर्वेद ही है अथर्ववेद में ही आयुर्वेद सम्बन्धी विस्तृत जानकारी मिलती है।

कृमि विज्ञान– कृमियों से अभिप्राय रोगोत्पादक सूक्ष्म जीवाणुओं से है, जो कि आँख से दृश्यमान नहीं है। ये मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं। इसमें से बहुत सर्पणशील, न रेंगेने वाले हैं।

इनको नष्ट करने के लिए कहा गया है। ये कृमि पृथ्वी, अन्तरिक्ष द्युलोक में रहते हैं। यजुर्वेद में कहा गया है –

'नमोऽस्तु सर्वेभ्यो ये के च पृथिवी मनु।

ये अन्तरिक्षे ये दिवितेभ्यः सर्पेभ्यो नमः।।

इन कृमियों के नाश के लिए अथर्ववेद में विस्तृत उल्लेख प्राप्त है। 'रक्त, माँस को दूषित करने वाले जन्तुओं को बहुत बड़े मारने के साधनों से मारता हूँ। जो जन्तु मेरे द्वारा बनायी औषधी आदि से पीड़ित है जो पीड़ित नहीं है वे सब सूख गये हैं जो बच गये हैं उनको मंत्र के बल से मारता हूँ जिससे इनके बीच कोई न बचे। (अथर्व. 2/31/3)

अथर्ववेद में वनस्पतियां – अथर्ववेद में कुछ वनस्पतियों का उल्लेख नाम से है, इनमें कुछ स्पष्ट है, कुछ अनिर्णीत है, वनस्पतियों का उपयोग अलग–अलग स्वतंत्र रूप में मिलता है। इनको मिश्रित रूप में नहीं वरता जाता था। विभिन्न वनस्पतियां जैसे – पिप्पली अपामार्ग, पृश्निपर्णी, नीम, रोहिणी, अश्वत्थ आदि है।

पिप्पली औषधि जीवन के लिए उपयोगी है। पिप्पली वातरोग और उन्माद अपस्मार की उत्तम औषधि है। (अथर्व. 6/10/1–3)

अत्रिपुत्र ने पिप्पली को 'आपातभद्रा' कहा है यह सब प्रकार से मंगलकारी इसे सभी ऋषियों ने बरता है, यह किसी भी प्रकार से हानि नहीं कर सकती।

अपामार्ग को 'चिरमिटा' या 'ओंगा' कहते हैं। इस महत्त्वपूर्ण औषधि का अत्रिपुत्र ने अपने दूसरे अध्याय का प्रारम्भ अपामार्ग तण्डुलीय अध्याय से किया है।

क्षुधाभारं तृष्णाभारं तथा अनपत्यताम्।

अपामार्ग त्वया वयं सर्व तदपमृज्महे।।

अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद्वशी।

तेन ते मृज्म आश्ति मय त्वभगदश्वर।। (अथर्व. 4/17/6–8)

अपामार्ग क्षुधा, तृष्णा, अनपत्यता में प्रयुक्त होता है सम्पूर्ण ओषधियों की अपेक्षा अपामार्ग के ही ये काम होते हैं।

इसी प्रकार प्रश्निपर्णी (पिठवन), रोहिणी (मांसरोहिणी) आदि वनस्पतियां विभिन्न औषधियों में प्रयुक्त होती है।

वेद के इस मंत्र को अत्रिपुत्र ने बहुत ही सुन्दरता से स्पष्ट किया है – 'सर्वदा सर्वभावानां वृद्धिकारणम्' – समान–समान को बढ़ाता है, इसी नियम से मांस–मांस से अधिक बढ़ता है, रक्त रक्त से, मेद–मेद से, वसा वसा से, अस्थि–अस्थि से, मज्जामज्य से, शुक्र–शुक्र से, गर्भ आम गर्भ से बढ़ता है इसी तरह रोहिणी नामक औषधि प्रत्येक वस्तु का रोहण करती है।

अथर्ववेद में अनेक औषधियों का वर्णन मिलता है।

यथा – (अथर्व. 4/37/4–6)

जहाँ पर अश्वत्थ, न्यग्रोध, ये महावृक्ष अपने पत्तो के साथ प्रसन्नता से रहते हैं, अर्जुन पिलखन, अघाट, कर्करी, अजश्रृंगी, अराटकी, तीक्ष्णश्रृंगी, ये वृक्ष एवं वनस्पतियाँ रहती हैं। वहाँ पर पानी में चरने वाले विषजन्तु नहीं रहते।

लाल रंग की गाय या सूर्य प्रकाश से स्वास्थ्य के लिए उत्तम बताया गया है। हरा–पीला रंग जो पित्त विकार को बताता है। रक्त की कमी का सूचक है वह सूर्य किरणों से दूर होता है। आज जो महत्त्वपूर्ण सूर्यचिकित्सा अल्ट्रावायलेट किरणों तथा इन्फ्रारेड किरणों का है वह अथर्ववेद में वर्णित है।

अंगों के नाम तथा रोगों के नाम – अथर्ववेद में शरीर के निर्माण के सम्बन्ध में पूँछा गया तथा इनका उत्तर भी दिया गया। इस प्रकार से प्रायः सब अंगों के नाम आ गये। यथा– इस पुरुष शरीर में एडियाँ किसने बनायी, मांसं गुल्म किसने बनाये इन्द्रियाँ किसने बनाया जिसने ग्रीवा, छाती, उरु और कंधों को बनाया इत्यादि सभी अंगों की जानकारी प्राप्त होती है।

अथर्ववेद में भिन्न–भिन्न अंगों में होने वाले रोगों के नाम भी मिलते हैं। यथा – सिर की पीड़ा, सिर के रोग, कर्णशूल, रक्त की कमी, कानों के अन्दर व बाहर कर्णशूल, विभिन्न प्रकार के ज्वर, उदर रोग, यक्ष्मा, हृदय रोग तथा विष प्रयोग से पीड़ित अंग तथा रोग इत्यादि वर्णित है।

ओषधियों के विषय में – बल्मीक में मिलने वाली ओषधि विशेष अतिसार, अतिमूल, आदि रोग शान्ति (2/3/1–6), हरिणश्रृंग और चर्म से क्षय, कुण्ठ, अपस्मारादि नाशन (3/7/3), शतवीर्या, दूर्बा से दीर्घायुष्य, नानारोग शान्ति (3/77/1–8), वृषा शुष्भादि ओषधियों से वृष्यत्व (4/4/1–8), कुष्ठ ओषधि का वर्णन (6/95/1–3), गुग्गुल धूप की गन्ध से यक्ष्म नाशन (19/35/7–3) विष से ही विष का प्रतीकार (7/88/1) तुलना कीजिए। तस्माद् दष्ट्राविषं मौलं हन्ति मौलं चंदष्ट्रिजम्। (चरक. चि. अ. 23/17) विष दोहन विषय से विष का प्रतीकार (8/5/7–16), मृत्युभय की निवृत्ति लिए दर्भमणि बन्धन (19 मृत्युभय की निवृत्ति लिए दर्भमणि बन्धन (19/32/1–2) आदि विषय अथर्व वेद में आये हैं।

अथर्व का सिर तथा अयोध्या नगरी – वेद में सिर की विशेष महत्ता है, अत्रि पुत्र ने सिर को सब अंगों से श्रेष्ठ कहा है। 'यदुत्तमांगङ्गानां शिरस्तदभिधीयते' – चरक इसी सिर को देवकोश कहा गया है (अथर्व) स्थिर चित्त योगी अपने मस्तिष्क के साथ हृदय को सीता है।

सिर में मस्तिष्क के ऊपर अपने प्राण को भेज देता है। यह ही अथर्व का सिर है, जिसे देवों का कोश कहा जाता है। इसकी रक्षा प्राण, मन, अन्न करता है। अमृत से परिपूर्ण जो इस नगरी को जानता है, उसको ब्रह्मा और इतर देव चक्षु, प्राण तथा पूजा द्रव्य देते हैं। आठ चक्र और नौ द्वारों से युक्त यह देवों की अयोध्या नगरी हैं, इसमें तेजस्वी कोश में जो पूज्य आत्मा है, उसको ब्रह्मज्ञानी लोग जानते हैं।

इस पुरुषशरीर को अयोध्या रूप में वर्णित किया गया है, जिसमें कोई भी लड़ नहीं सकता (न योद्धुं शक्या अयोध्या) कोई भी रोग रूपी शत्रु इस नगरी से लड़ नहीं सकता। (अथर्व. 10/2/32)

अथर्व चिकित्सा– इस चिकित्सा को अथर्वा ऋषि ने कहा है, यह चिकित्सा चार प्रकार की है, आथर्वणी, अंगिरसी, दैवी और मानुषी। इसमें मानुषी चिकित्सा औषधियों से सम्बन्धित है। दैवी चिकित्सा वायु, जल आदि से सम्बन्ध रखती है। अंगिरसी चिकित्सा मानसिक शक्ति से सम्बन्ध रखती है। आथर्वणी चिकित्सा जप – होम – दान – स्वस्तिवाचन आदि से सम्बन्ध रखती है।

आथर्वणीरांगिरसी दैवीर्मनुष्यजा उत।

ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि।।

हे प्राण! जब तक तू प्रेरणा करता है, तब तक ही आथर्वणी, अंगिरसी, दैवी और मानुषी ओषधियाँ फल देती हैं। प्राण रहने पर ही ओषधियों से लाभ होता है।

अंजन 7/30/36 अपामार्ग 4/17, 4/18, 4/19 अपांभेषज 7/4, 5, 6 अक्षिरोग भेषज 6/76 आञ्जन 4/9, 19/45, आप 1/33, 3/13, आश्रव की ओषधि 2/3, ओषधि 8/7, 6/59, कुष्ठौषधि 6/95, केश वृंहण 6/136, केश वर्धन 6/137, केशवर्धनी ओषधि 6/21 गर्भसंश्राव 20/96, 11–16, पिप्पली भैषज्य 6/109, पृश्निपर्णी, भैषज्य 6/22, 52, 83, 11/83, 11/44, रोहिणी वनस्पति 4/12 लाक्षा 5/5, वनस्पति 3/18, वाजीकरण 4/4, विषभैषज्य 7/56, सौभाग्य–वर्धन 6/139।

रोगादि निवारण – इषु निष्कासन 6/90, उन्मत्तता मोचन 6/111, कासशणन 6/104 कुष्ठतक्म नाशन 5/4, कुष्ठ नाशन 19/39, क्लीवत्वनाशन 6/138, गर्भवृंहण 6/17, गर्भदोष निवारण 8/6, गण्डमाला चिकित्सा 7/74–76, चिकित्सा 6/96, जल चिकित्सा 6/57, ज्वरनाशन 1/25, 7/116, तक्भनाशन 5/22, दुस्वप्ननाशन 20/96, नारी सुख प्रसूति 1/112, लदमउ अमडअ 6/14, मूत्र 1/3, यक्ष्मनाशन 1/12, 3/7, 31, 6/20, 85, 91, 127, 12/2, रुधिर श्राव को रोकने के लिए धमनी को बाँधना 1/77, रोग नाशन 6/44/22।

उपसंहार. – निष्कर्षतः स्पष्ट होता है कि आरोग्य लाभ एवं दीर्घायु चाहने वाले पुरुष को आयुर्वेदीय ग्रन्थों जैसे – चरक संहिता, सुश्रुत संहिता आदि के साथ ही सभी वेदों का अध्ययन करना चाहिए क्योंकि सभी वेदों अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद आयुर्वेदिक विषयों से भरा है जिसमें अनेक प्रकार के वनस्पति चिकित्सा को बताया गया है। यद्यपि अथर्ववेद में चिकित्सा विज्ञान का विशेष रूप से वर्णन हुआ है किन्तु इसके आलावा अन्य वेदों में भी वनस्पति चिकित्सा विज्ञान का वर्णन हुआ है अतः स्पष्ट है कि व्यक्ति की स्थिर निरोगता इन वनस्पति चिकित्सा विज्ञानों द्वारा सम्भव है जो वर्तमान अग्रेंजी दवाओं द्वारा सम्भव नहीं है। इसलिए वेदों में वर्णित चिकित्सा विज्ञान का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ

1. ऋ. 1/176/15
2. सुश्रूत सू.अ. 24/10/20
3. ऋ. 10/97/4
4. ऋ. 10/90/4
5. ऋ. 10/17/1
6. ऋ. 10/164/1
7. ऋ. 10/137/03
8. चरक सू.अ. 1/120–123
9. भामिनी विलास
10. यजुर्वेद 12/8
11. यजुर्वेद 12/91
12. चरक सू.अ. 1/70/72
13. चरक सू.अ. 30/21
14. अथर्ववेद 2/31/3
15. अथर्ववेद 6/10/1–3
16. अथर्ववेद 4/17/6–8
17. अथर्ववेद 4/37/4–6
18. अथर्ववेद 10/2/32
19. चरक सू.अ. 30/31